International Journal of Scientific Research in Science and Technology
Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X (www.ijsrst.com)
doi : https://doi.org/10.32628/IJSRST

"महाभोज" उपन्यास में राजनीतिक व्यवहार के विविध आयाम

डॉ. नीलम

हिंदी विभाग, लक्ष्मीबाई कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

Article Info
Volume 7, Issue 6
Page Number : 540-543

Publication Issue
November-December-2020

Article History
Accepted : 10 Nov 2020
Published : 10 Dec 2020

सन 1979 में प्रकाशित 'मन्नू भंडारी' का उपन्यास ''महाभोज'' एक राजनीतिक उपन्यास माना जाता है। ''महाभोज'' तत्कालीन 'बेलछीकाण्ड'(बिहार में दलित नरसंहार की घटना) से जन्मी लेखकीय उत्तेजना का प्रतिफलन है। रचनाकार के कथा संग्रह 'त्रिशंकु' में संग्रहित 'तीसरा हिस्सा' और 'अलगाव' कहानियों में इसका संकेत मिलता है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या ''महाभोज'' रचनाकार की अन्य रचनाओं से बिल्कुल अलग है। मन्नू भण्डारी की रचनाओं पर दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि प्राय: इनकी रचनाएं व्यक्तिगत समस्याओं को ही लेकर लिखी गई हैं जैसे- "आपका बंटी" उपन्यास। इसके अलावा जब हम उनके समकालीन रचनाकारों पर दृष्टि डालते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि ''महाभोज'' किस प्रकार से अन्य रचनाओं से भिन्न है। 'हिमांशु जोशी' का "समय साक्षी है"(सन 1979) आपातकाल की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। इसका कथानक एक मंत्री के दांव -पेचों एवं नायक के आदर्शवादी चरित्र (लोक नायक 'जयप्रकाश नारायण' जैसे) पर आधारित है जबकि 'राही मासूम रज़ा' का "कटरा बी आरज़ू" (1979) उपन्यास आपातकाल के दौरान वर्ण्यस्थल 'कटरा के 'श्रीमती गांधी' में तब्दील हो जाने की बात रोचक ढंग से उठाता है ,परंतु दोनों ही रचनाओं में सामाजिक विसंगतियों के वर्णन का आभाव दिखाई देता है। इनके बरक्स लेकिन "महाभोज" ना तो एक राजनीतिक दस्तावेज है और न ही स्त्री- पुरुष संबंधों के दायरे में बंधी हुई गल्प रचना ही है।

"महाभोज" एक सामाजिक उपन्यास न होकर पूरी तरह से यह एक राजनीतिक उपन्यास है, लेकिन इसकी सामाजिकता को यूं ही नहीं नकारा जा सकता, क्योंकि बिना समाज के राजनीति नहीं और बिना राजनीति के समाज नहीं। लेकिन फिर भी अगर मन्नू भंडारी की अन्य रचनाओं पर दृष्टि डालें तो बात स्पष्ट हो जाएगी कि उनकी अन्य रचनाओं में स्त्री- पुरुष संबंध, सामाजिक- कुरीतियों, आडंबर, परंपरा आदि बातों का समावेश है। जबकि "महाभोज" में इन सब बातों का कोई सरोकार नहीं है। "महाभोज" में 'मन्नू भंडारी' ने यह दिखाया है कि किस प्रकार चुनाव के दिनों में छोटी से छोटी घटना के प्रति राजनेता किस प्रकार सक्रिय हो उठते हैं। स्वयं मन्नू भंडारी का वक्तव्य है कि 'मैं इन दिनों राजनीतिक उपन्यास "महाभोज" पूरा करने जा रही हूं।'

"महाभोज" के संदर्भ में यह प्रश्न उठता है कि इसके राजनीतिक यथार्थ का स्वरूप क्या है? इस बारे में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि मन्नू भंडारी की दिलचस्पी घटनाक्रम के वर्णन में नहीं है वरन् एक व्यक्ति की मौत राजनीतिज्ञ रूपी गिद्धों के लिए किस तरह से महाभोज का माध्यम बन गई यह दिखाना उनकी रचना का ध्येय मालूम पड़ता है-" जैसे ही खबर शहर में पहुंची, वहां से मंत्रियों,

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

नेताओं और अख़बार-नवीसों की गाड़ियों का ताँता लग गया। आग से उठने वाले धुएँ के बादल तो एक ही दिन में छँट गये थे, पर शहरी गाड़ियों से उठने वाली धूल के बादल कई दिनों तक मँडराते रहे।"(महाभोज-मन्नू भण्डारी,पेज- 10,राधाकृष्ण प्रकाशन)

सत्ताधारी लोगों के लिए इंसान या इंसानियत से कोई मतलब नहीं होता। उनका एक ही ईमान-धर्म होता है और वह है उनकी राजनीतिक कुर्सी। अपनी कुर्सी को बचाने के लिए ये किसी भी हद तक जा सकते हैं। इनके लिए किसी के जान की कोई कीमत नहीं होती। ये गिद्ध की तरह हैं मुद्दे मिले नहीं कि ये उस पर मंडराने लगते हैं और उसे नोच-नोच कर खाने लगते हैं। किसी की जान नेताओं के लिए दावत के समान होती है । नेताओं के इसी प्रवृत्ति का यथार्थ चित्रण करते हुए "महाभोज" के माध्यम से मन्नू भण्डारी कहती हैं- "क्यों नहीं, क्यों नहीं, बिसू की मौत और हरिजनों पर होने वाले जुलुम तो सेलिब्रेट होने ही चाहिए! इससे मौजूँ मौक़ा और कौन दिन मिल रहेगा?"....."शाम को दस-बारह लोगों का जमावड़ा जम गया चौपाल में। स्कॉच की बोतल खुली है। शहर से स्पेशल सींक कबाब और पनीर के पकौड़े आये हैं। दा साहब के संरक्षण में पला लखनसिंह पीने का शौक नहीं रखता। कभी-कभी चोरी-छिपे एक-आध पैग चढ़ा ले तो यह दूसरी बात है पर, पांडे जी की तो यह दैनिक आवश्यकता है। शाम को दो पैक के बिना न सारे दिन की थकान मिटती है, न ही अगले दिन के लिए चुस्ती आती है। और जोरावर, विलायती चाहे कितनी ही पी ले.... जब तक थोड़ी देसी नहीं ले लेता, तृप्ति नहीं होती!" (वहीं, पेज-177,171)

इस तरह से लेखिका की यह प्रवृत्ति आठवें दशक के उत्तरार्ध के सिनेमा एवं साहित्य की धारा से भिन्न है; क्योंकि "महाभोज" का दबा-कुचला चरित्र फिल्मी अभिनेता की तरह न तो बंदूक उठाता है और न ही आदर्श की बातें करता है। वह सिर्फ यथार्थ को जीता है। "महाभोज" एक प्रतिक्रियावादी उपन्यास नहीं है अपितु नियतिवाद से प्रभावित है। तब प्रश्न यह उठता है की प्रतिक्रियावाद के उस दौर में इस प्रकार के नियतिवादी उपन्यास की रचना क्यों उस विशेष कालखंड में हुई जबकि, राजनीति में 'जनतापार्टी' भारत की केन्द्रीय सत्ता में जनता की सरकार विरोधी प्रतिक्रिया के फलस्वरुप सत्ता में आई थी। यह इंदिरा शासन द्वारा लगाए गए आपातकाल के महज चार वर्ष बाद की बात है। नई सरकार से अपेक्षाएं जनता में स्वाभाविक रूप से बढ़ी हुई थीं। राजनेता अपने क्षुद्र राजनीतिक दांव-पेंचों में ही बंधे हुए थे। कुछ तत्कालीन उपन्यासकारों ने इस राजनीतिक घटनाक्रम को अपनी रचनाओं के केंद्र में रखा है। मन्नू भंडारी के शब्दों में "जब घर में आग लगी हो तो सिर्फ अपने अंतर्जगत में बने रहना या उसी का प्रकाशन करना क्या खुद ही अप्रासंगिक, हास्यपद और किसी हद तक अश्लील नहीं लगने लगता? संभवत: इस उपन्यास की रचना के पीछे यही प्रश्न रहा हो।" (वहीं, भूमिका)

वे जहां अपने आरंभिक उपन्यास ''आपका बंटी" में भावुकता एवं करुणा से पाठक को अश्रुविगलित करने का प्रयत्न करती हैं और "स्वामी" में प्रेम की मार्मिक व्याख्या करती हैं, वहीं "महाभोज" उनके लिए स्वयं के अंतर्जगत से निकलने की सक्रिय कोशिश है। तत्कालीन राजनीतिक स्थितियां उन्हें ऐसी रचना करने के लिए बाध्य करती हैं। उन स्थितियों की यथार्थ व्याख्या "महाभोज" को नियतिवाद की ओर ले जाती है। "महाभोज" के पहले भी अनेक राजनीतिक उपन्यास लिखे गये, परंतु इसकी राजनीतिक चिंता का स्वरूप अलग है। "महाभोज" की राजनीतिक चेतना महज राजनीतिज्ञों के दांव-पेचों में उलझी नहीं है बल्कि (उस समय) हमारे राजनेता और भ्रष्ट्र शासकीय मशीनरी जिस समय से हमारी गंभीर सामाजिक समस्याओं के साथ घिनौने राजनीतिक स्वार्थ के खेल खेल रहे थे यह उसकी एक दर्दनाक दास्तान है यह हमारे तब और आज के समाज का राजनीतिक यथार्थ है। समाज में फैले भ्रष्टाचार का खुलासा करते हुए मन्नू भण्डारी लिखती हैं- "लेकिन किसी के दिमाग में एक क्षण के लिए भी यह बात ना आयी कि डी.आई.जी. की हैसियत का आदमी इतनी क़ीमती शराबें कहां से पिला सकता है, कैसे पीला सकता है? किसी बड़े जौहरी की दुकान के शो-केस की शोभा बढ़ाने वाला कम-से-कम बीस-पच्चीस हज़ार के हीरों का सेट श्रीमती सिन्हा के शरीर की शोभा बढ़ाने कैसे आ पहुंचा... कहां से आ पहुंचा?..... मिल गया परमिट? एकदम उछल पड़ा भवानी, 'वाह काग़ज़-संकट के इस समय में कोटा एकदम डबल हो जाए तो समझो कि पौ-बारह।"(वहीं, पेज-174-175)

"महाभोज" जैसे राजनीतिक उपन्यास की चाहे कितनी ही अधिक व्याख्याएं हो परंतु उसकी सबसे महत्वपूर्ण व्याख्या राजनीतिक यथार्थ की होती है। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि रचनाकार जो भी राजनीतिक विषय-वस्तु उठाता है, उसमें उसकी

अपनी राजनीतिक चेतना भी जुड़ी होती है। मन्नू जी की चेतना भी स्वाभाविक रूप से जुड़ी हुई दिखाई देती है। तभी तो वो कहती हैं- "अरे यों तो धोती के नीचे सभी नंगे और ससुरी इस राजनीति में तो धोती के बाहर भी नंगे।"(वहीं, पेज-179)

स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भाग लेने के बाद उन्होंने एक राजनीतिक विचारधारा से स्वयं को जोड़ा। आपातकाल के बाद 'जनता पार्टी' का शासन और राजनीतिज्ञों के बदलते मुखौटों ने उनकी इस चेतन को प्रभावित किया। यह प्रभाव "महाभोज" में विभिन्न जगहों पर दिखाई देता है। जयप्रकाश नारायण की 'संपूर्ण क्रांति' का प्रभाव उतने व्यापक रूप से तो नहीं दिखाई देता है परंतु समाजवाद का प्रभाव अवश्य ही है। 'नक्सलवाद' का नाम कुछ एक जगहों पर तीखी चमक के साथ है, परंतु हरिजनों एवं खेत मजदूरों को उनके अधिकारों के लिए सचेत भी करता है। मन्नू भंडारी की राजनीतिक दृष्टि इसी बात में निहित है। सामान्य जनता परिस्थितियों से दुखी तो अवश्य है परंतु "महाभोज" में सक्सेना के रूप में आशाएं अभी जीवित है। "रेल के सेकंड-क्लास के डिब्बे में सक्सेना की बग़ल में बैठी हुई रुक्मा घुटनों में सिर दिए सिसक रही है और सक्सेना के अपने मन में जैसे धीरे-धीरे कोई कराह रहा है। गोदी में रखे ब्रीफ़केस में आगजनी के, बिसू की मौत के प्रमाणों से भरी फ़ाइलें ले रखी हैं।"(वहीं,पेज-183)

"महाभोज" का राजनीतिक परिप्रेक्ष्य रचना से व्यापक रूप से जुड़ता है। इसका राजनीतिक यथार्थ आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना तब था। बिहार के जातीय-नरसंहार "महाभोज" के 'बिसू' की हत्या की कड़ी से सहज ही जुड़े हुए दिखाई देते हैं। उपन्यास के अंत में एस.पी. सक्सेना जिस न्याय की आशा से दिल्ली जाता है, उपन्यास से हटकर आज के यथार्थ की ओर देखने पर लगता है कि वह टूट चुकी है, जिसकी परिणति अब व्यापक नरसंहार में हुई है। लेकिन आज भी वैसे ही नरसंहार राजनीतिज्ञों के लिए उतने ही बड़े 'महाभोज' हैं, कभी-कभी उससे भी बड़े। लोकतांत्रिक चुनावों की भूमिका आज भी 'महाभोज' के आधार क्षेत्र में 'नरसंहार' ही तय करते हैं। चुनाव कभी भी हो राजनीतिज्ञों का महाभोज अवश्यंभावी है। राजनेताओं को गिद्ध की संज्ञा देते हुए मन्नू भण्डारी कहती हैं- "लावारिस लाश को गिद्ध नोच-नोच कर खा जाते हैं। पर बसेसर लावारिस नहीं।"(वहीं, पेज-9)

"महाभोज" सामाजिक विसंगतियों के साथ-साथ राजनीतिक द्वंद का भी उपन्यास है क्योंकि इसमें एक ही व्यक्ति-'बसेसर' की मौत से उपजे राजनीतिक घमासान को आधार मिला है। जबकि पास के गांव में पूरी एक हरिजन बस्ती को जला देने की घटना मन्नू भंडारी को उतनी अधिक प्रभावित नहीं करती। एक ओर आशाओं-आकांक्षाओं में डूबते-उतरते सामान्य जनों के रूप में हीरा, बिंदा ,महेश बाबू और रुकमा हैं तो दूसरी ओर परिस्थितियों से विद्रोह करते बसेसर और सक्सेना। एक को विद्रोह स्वरूप मौत मिलती है तो दूसरे को संघर्ष का मार्ग। लेखिका इसके लिए आश्चर्जनक रूप से राजनीतिज्ञों को नहीं वरन् परिस्थितियों को दोषी ठहराती हैं।

"महाभोज" का राजनीतिक यथार्थ दा साहब, सुकुलबाबू, अप्पा साहब, पांडे जी, लखन, जोरावर व काशी के माध्यम से भिन्न-भिन्न रूपों में सामने आया है। "महाभोज" के ये सभी चरित्र अपनी ओर से कुछ भी गलत करते दिखाई नहीं देते हैं, बल्कि लगता है की परिस्थितियां ही उन्हें ऐसा करने को बाध्य कर रही है। सन1983 में प्रकाशित "महाभोज" के नाट्य रूपांतरण में 'मंच -प्रस्तुति से पहले' कॉलम में मन्नू भंडारी लिखती है- "उपन्यास के रूप में "महाभोज" न चरित्र प्रधान उपन्यास है, न समस्या प्रधान। वैसे कथानको में आसानी यह होती है कि सारी चीज को समेटकर चरित्र या समस्या के आस-पास केंद्रित कर दिया जाता है। रचना तब चुस्त भी लगती है और नुकीली भी "महाभोज" आज के राजनैतिक माहौल को उजागर करने वाला स्थिति-प्रधान उपन्यास है। आज राजनीति को स्वप्नों, आदर्शों और मूल्य वाला व्यक्ति नहीं चलाता, बल्कि राजनीति खुद अपने चरित्र गढ़ती चलती है- ऐसे चरित्र जो अपने भीतरी निर्णय, विवेक या साहस से नहीं चलते वरन् स्थितियों के दबाव से बनते-बिगड़ते हैं। उनका महत्व इसमें निर्जीव मोहरों से अधिक नहीं। हर प्यादे की लड़ाई फर्जी बनने की है और लड़ाई की इस विरासत ने समाज के हर वर्ग को धीरे-धीरे अपने चंगुल में कस दिया है, लेकिन मनुष्य क्या इतनी आसानी से अपने को स्थितियों के हवाले कर देता है? वह बिलकुल भी प्रतिरोध नहीं करता? इस अर्थ में यह उपन्यास स्थिति प्रधान भी है और यथास्थिति के विरुद्ध विद्रोह भी।"(मन्नू भण्डारी का उपन्यास साहित्य -मिश्र नंदनी, हिन्दी साहित्य भण्डार, पेज-87)

मन्नू भंडारी के उक्त वक्तव्य से स्पष्ट रूप से यह सवाल उठता है कि राजनीतिज्ञ क्या ईमानदारी से परिस्थितियों से लड़ने की कोशिश करता है? इसके उत्तर को यदि मन्नू भण्डारी जी के वक्तव्य में ढूंढे तो वह बेचारा चाह कर भी विद्रोह नहीं कर पाता क्योंकि 'राजनीति खुद अपने चरित्र गढ़ती है।' परंतु सच कहें तो स्थितियों के दबाव से बनने वाला चरित्र कुछ नहीं 'कायर' ही हो सकता है। "महाभोज" यथार्थ को तो दिखता है; परंतु घिनौने यथार्थ को नियति मान लेना स्वयं में अपमानजनक लगता है। यहां पर मन्नू भण्डारी के अपने विचार प्रभावी हो गए हैं; उनके ऐसे विचार उनकी कहानी 'मैं हार गई' में दिखाई देते हैं। नारी के घरेलू रूप को ही स्वीकारने के कारण "महाभोज" में महिला राजनीतिज्ञों की उपस्थिति शून्य रही है। जबकि तत्कालीन राजनीति में 'इंदिरा गांधी' राजनीति के सर्वोच्च शिखर पर थीं। लगभग पच्चीस प्रमुख पात्रों में से मात्र चार ही स्त्री पात्र हैं। जिनमें से केवल रुकमा ही प्रभावी रूप में सामने आई है परंतु वह भी पुरुष के साए में, प्रत्येक जगह घरेलू बंधन में, स्वतंत्र कहीं भी नहीं। "महाभोज" के अध्ययन के राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में एक लंबे समय से चली आ रही शोषक वर्ग द्वारा निम्न वर्ग के शोषण की प्रवृत्ति तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक स्थिति, राजनीतिज्ञों की महत्वाकांक्षा एवं स्वयं लेखिका की अपनी राजनीतिक समझ है। आज भी राजनीतिक स्थितियां उतनी ही जटिल है जितनी तब थी, जब "महाभोज" की रचना हुई। कहीं ना कहीं से कोई ऐसा खोट हमारी समाज व्यवस्था में शेष रह गया था, जिसने आजादी के बाद की समस्याओं को जन्म दिया और देश के विकास में अवरोध पैदा किया। "महाभोज" में मन्नू भण्डारी जी का सवाल भी यही है और इसी के जवाब की तलाश भी "महाभोज" में की गई है। सामाजिक व्यवस्था में उपजे दोषों में एक प्रधान दोष यह रहा है कि वर्ण-व्यवस्था के स्थूल भेद के स्थान पर आधुनिक भारत में जातीय व्यवस्था के सूक्ष्म भेद उभरे। "महीने -भर पहले की ही तो बात है- गांव की सरहद से जरा परे हटकर जो हरिजन टोला है, वहां कुछ झोपड़ियों में आग लगा दी गई थी, आदमियों सहित। दूसरे दिन लोगों ने देखा तो झोपड़ियां राख में बदल चुकी थीं और आदमी कबाब में। लोग दौड़े -दौड़े थाने पहुंचे, पर थानेदार साहब उस दिन छुट्टी पर थे, और जो दो लोग वहां ड्यूटी पर थे उन्होंने यह कह कर बात टाल दी की थानेदार साहब के आने पर ही मौके पर आयेंगे और तहकीकात होगी।"(महाभोज,पेज-10)

"महाभोज" में लेखिका ने अर्थ की समस्या को भी बहुत बारीकी से दिखाया है। "महाभोज" की रचना से पहले उस समाज पर दृष्टि डाले जहां से लेखिका ने अपनी जमीन तैयार की है। स्व. श्रीमती इंदिरा गांधी के समय जब इमरजेंसी लागू हो गई थी तो उस समय कालाबाजारी अपना जोर पकड़ चुकी थी। गांवों में सार्वजनिक सुविधा हेतु ठेकेदारों को पैसा दिया जाता था लेकिन ठेकेदार लोग यह रुपया आपस में ही बांट लेते थे कोई सार्वजनिक कार्य नहीं होता था। "महाभोज" में जोरावर के द्वारा मन्नू भंडारी ने इस सच्चाई को उजागर किया है जो आज भी हमारे समाज में व्याप्त है।

सहायक पुस्तकें-

1. महाभोज- मन्नू भण्डारी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
2. मन्नू भण्डारी का कथा साहित्य- गिरडकर किशोर, विश्व भारती प्रकाशन
3. मन्नू भंडारी का उपन्यास साहित्य- मिश्र नंदिनी, हिंदी साहित्य भंडार, लखनऊ
4. मन्नू श्रेष्ठ सृजनात्मक साहित्य- बंशीधर मिश्र और राजेंद्र मिश्र, नटराज पब्लिशिंग हाउस, करनाल हरियाणा
5. मन्नू भंडारी का कथा साहित्य- हाडे गुलाब राय, विद्या विहार पब्लिकेशन, कानपुर